UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180909

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81·6 | S53Me Accession No. GH·2199

Author अरुन्धती, जानकीवल्लभ।

Title मेघगीत। 1952

This book should be returned on or before the date last marked below

मेघगीत

श्रीजानकीवल्लभ शास्त्री

कापी राइट १६५२
छाया देवी
सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण १०००

राधा प्रिंटिंग वर्क्स, मुजफ्फरपुर में मुद्रित
और
छाया देवी द्वारा प्रकाशित

मेघगीत

बादल री,
बिन्दु - बिन्दु मधु बरसे,
बरसे भूतल बादल री !

श्री जानकीवल्लभ शास्त्री

जन्म : १९१६ जन्मभूमि : मैगरा (गया)

प्रकाशित रचनाएँ :

संस्कृत :	काकली (गीतिकाव्य)	१९३५
हिन्दी :	रूप-अरूप (गीतिकाव्य)	१९४०
	कानन (कहानियाँ)	१९४१
	अपर्णा (कहानियाँ)	१९४३
	गाथा (कथा-काव्य)	१९४५
	साहित्य-दर्शन (निबन्ध-प्रबन्ध)	१९४५
	,, ,, (द्वितीय संस्करण)	१९५१
	तीर-तरंग (गीतिकाव्य)	१९४५
	शिप्रा (गीतिकाव्य)	१९४१
	,, ,, (द्वितीय संस्करण)	१९५१
	मेघगीत (गीतिकाव्य)	१९५१

अप्रकाशित रचनाएँ :

संस्कृत :	वन्दी-मन्दिरम् (खण्डकाव्य)	१९३१
	प्राच्य साहित्यम् (प्रबन्ध)	१९३८
	लीला पद्मम् (मुक्तक)	१९४
हिन्दी :	बाललता (गीतिकाव्य)	१९१
	राधा (महाकाव्य)	१९४
	वेणुवन (कहानियाँ)	१९४
	काव्य-कला (निबन्ध-प्रबन्ध)	१९४
	शिशिर-किरण (गीतिकाव्य)	१९४
	सुरसरि (गीतिकाव्य)	१९४
	वैशाखी (व्यंग्यकाव्य)	१९५
	किरण (उपन्यास)	१९४
	पाषाणी (नाटक)	१९४
	अवन्तिका (गीतिकाव्य)	१९४०-४

सम्पादित :

महाकवि निराला	१९

अनुक्रम

प्रथम पंक्ति	गीत संख्या	पृष्ठ संख्या
१६३६		
१–बजी आज घन में	१६	१४
२–नए घन नए	११	१८
३–बदलती नवल धुति	२२	३१
४–मैं न चातकी	२४	३४
१६३७		
५–कजरारी री, घिरी बदरिया	२३	३२–३३
६–मेरी ग्वाल लाल, स्वर्णिम	२६	४०–४१
१६३८		
७–झलमल-मुक्तादल-नव-जल-धर	५	७–८–९–१०
८–मेघ रन्ध्र में मन्द्र सान्द्र ध्वनि	७	१३
९–मुकुल-मुख फूलो ना	२५	३५
१६३९		
१०–सावन की नीर-भरी बदरी	३	५
११–उमड़-घुमड़ घन घेर-घेर	४	६
१२–बादल के पंखों से उड़कर	६	१५–१६
१३–गीला ही रहता आँचल	१०	१७
१४–अन्धकार-सघन-गगन आज रे	१७	२५
१६४०		
१५–तड़-तड़ पल-छिन गिनते	२६	३६
१६४२		
१६–बजी बज्र में तेरी बाँसुरिया बेजार	३७	३७
१७–कौन देगा साथ इस तूफान में	२८	३८–३९
१६४५		
१८–मीरा की करूँ बड़ाई	१	१–२
१९–खुली केश राशि खुली रहने दे	१२	१९

श्री जानकीवल्लभ शास्त्री

जन्म : १९१६ जन्मभूमि : मैगरा (गया)

प्रकाशित रचनाएँ :

संस्कृत :	काकली (गीतिकाव्य)	१९३५
हिन्दी :	रूप-अरूप (गीतिकाव्य)	१९४०
	कानन (कहानियाँ)	१९४१
	अपर्णा (कहानियाँ)	१९४२
	गाथा (कथा-काव्य)	१९४५
	साहित्य-दर्शन (निबन्ध-प्रबन्ध)	१९४४
	,, ,, (द्वितीय संस्करण)	१९५१
	तीर-तरंग (गीतिकाव्य)	१९४५
	शिप्रा (गीतिकाव्य)	१९४५
	,, ,, (द्वितीय संस्करण)	१९५१
	मेघगीत (गीतिकाव्य)	१९५१

अप्रकाशित रचनाएँ :

संस्कृत :	वन्दी-मन्दिरम् (खण्डकाव्य)	१९५७
	प्राच्य साहित्यम् (प्रबन्ध)	१९६८
	लीला पद्मम् (मुक्तक)	१९४१
हिन्दी :	बाललता (गीतिकाव्य)	१९३४
	राधा (महाकाव्य)	१९४३
	वेणुवन (कहानियाँ)	१९४७
	काव्य-कला (निबन्ध-प्रबन्ध)	१९४६
	शिशिर-किरण (गीतिकाव्य)	१९४८
	सुरसरि (गीतिकाव्य)	१९४८
	वैशाखी (व्यंग्यकाव्य)	१९५०
	किरण (उपन्यास)	१९४२
	पाषाणी (नाटक)	१९४८
	अवन्तिका (गीतिकाव्य)	१९४०–४३

सम्पादित :

महाकवि निराला १९४८

अनुक्रम

प्र पंक्ति	गीत संख्या	पृष्ठ संख्या
१९३९		
बजी आज घन में	१९	१४
नए घन नए	११	१८
बदलती नवल धुति	२२	३१
मैं न चातकी	२४	३४
१९३७		
कजरारी री, घिरी बदरिया	२३	३२–३३
मेरी ध्वजा लाल, स्वर्णिम	२६	४०–४१
१९३८		
झलमल-मुक्तादल-नव-जल-धर	५	७–८–९–१०
मेघ रन्ध्र में मन्द्र सान्द्र ध्वनि	७	१३
मुकुल-मुख फूलो ना	२५	३५
१९३९		
सावन की नीर-भरी बदरी	३	५
उमड़-घुमड़ घन घेर-घेर	४	६
बादल के पंखों से उड़कर	६	१५–१६
गीला ही रहता आँचल	१०	१७
अन्धकार-सघन-गगन आज रे	१७	२५
१९४०		
तब-तृण पल-छिन गिनते	२६	३६
१९४२		
बजी बज में तेरी बाँसुरिया बेजार	३७	३७
कौन देगा साथ इस तूफान में	२८	३८–३९
१९४५		
मीरा की करूँ बड़ाई	१	१–२
खुली केश-राशि खुली रहने दे	१२	१९

श्री जानकीवल्लभ शास्त्री

जन्म : १९१६ जन्मभूमि : मैगरा (गया)

प्रकाशित रचनाएँ :

संस्कृत :	काकली (गीतिकाव्य)	१९३५
हिन्दी :	रूप-अरूप (गीतिकाव्य)	'४०
	कानन (कहानियाँ)	'४१
	अपर्णा (कहानियाँ)	'४२
	गाथा (कथा-काव्य)	'४४
	साहित्य-दर्शन (निबन्ध-प्रबन्ध)	'४४
	,, ,, (द्वितीय संस्करण)	'५१
	तीर-तरंग (गीतिकाव्य)	'४५
	शिप्रा (गीतिकाव्य)	'४५
	,, ,, (द्वितीय संस्करण)	'५१
	मेघगीत (गीतिकाव्य)	'५२

अप्रकाशित रचनाएँ :

संस्कृत :	वन्दी-मन्दिरम् (खण्डकाव्य)	'३७
	प्राच्य साहित्यम् (प्रबन्ध)	'३८
	लीला पद्मम् (मुक्तक)	'४१
हिन्दी :	बाललता (गीतिकाव्य)	'३४
	राधा (महाकाव्य)	'४३
	वेणुवन (कहानियाँ)	'४७
	काव्य-कला (निबन्ध-प्रबन्ध)	'४६
	शिशिर-किरण (गीतिकाव्य)	'४८
	मुरलरि (गीतिकाव्य)	'४८
	वैशाखी (व्यंग्यकाव्य)	'५०
	किरण (उपन्यास)	'४२
	पाषाणी (नाटक)	'४८
	अवन्तिका (गीतिकाव्य)	'४०-४६

सम्पादित :

महाकवि निराला '४८

अनुक्रम

प्रथम पंक्ति	गीत संख्या	पृष्ठ संख्या
१९३६		
१–बजी आज घन में	१९	१४
२–नए घन नए	११	१८
३–बदलती नवल धुति	२२	३१
४–मैं न जानती	२४	३४
१९३७		
५–कजरारी री, घिरी बदरिया	२३	३२–३३
६–मेरी ज्वाल लाल, स्वर्णिम	२९	४०–४१
१९३८		
७–झलमल-मुक्तादल-नव-जल-धर	५	७–८–९–१०
८–मेघ रन्ध्र में मन्द्र सान्द्र ध्वनि	७	११
९–मुकुल-मुख फूलो ना	२५	३१
१९३९		
१०–सावन की नीर-भरी बदरी	३	५
११–उमड़-घुमड़ घन घेर-घेर	४	६
१२–बादल के पंखों से उड़कर	६	१५–१६
१३–गीला ही रहता आँचल	१०	१७
१४–अन्धकार-सघन-गगन आज रे	१७	२५
१९४०		
१५–तप-तृष्ण पल-छिन गिनते	२६	३६
१९४२		
१६–बजी बज्र में तेरी बाँसुरिया बेजार	३७	३७
१७–कौन देगा साथ इस तूफान में	२८	३८–३९
१९४५		
१८–मीरा की करूँ बड़ाई	१	१–२
१९–खुली केश-राशि खुली रहने दे	१२	१९

२०–अब उमड़ो-घुमड़ो घन	१३	१०
२१–घन बन मन के पाहुन आए	१४	२१
२२–एक यही आस, तुम पुकारोगे	१६	२७
२३–इतनी घनी घटा घिर आई	२०	२६
१६४७		
२४–मेघ के दिन किस तरह कोई बिताए	१५	२२
२५–गागर भर कर घर की ओर चली	१६	२३
२६–जो तुम आए नहीं, मेघ क्या करने आए	१८	२६
२७–बादल बल-जीवन की छलना	२१	३०
२८–दुर्दिन के ये मेघ मलिन आए	३०	४२
१६४८		
२६–आँसू लाल हुए धरती के	३१	४३
३०–ये आए, दूसरे, नए	३२	४५
१६५०		
३१–पावस की ऋतु प्यारी-प्यारी	२	३
३२–सप्त गगन को सप्त सुरों से भर कर	६	११
३३–आद्य सृष्टि का आदिम स्रष्टा	३२	४६
३४–नभ पर पर्वत से मेघों का दल छाया	३४	४७
३५–जीवन जीव मात्र को देने पावस रस-शीतल	३५	५०
३६–उतर खेत में, आक-जवासा-भरे खेत में,	३६	५२-५४
३७–जलकण बरसाने वाली	३७	५५-५६
३८–पूर्व दिशा में बादल उमड़े	३८	५७-५८
३६–पीपल की डाली झुक आ री,	३६	५६-६०
४०–शून्य प्रथम था, रंग मिला फिर नभ को,	४०	६१-६२

४१–मेघों की शीतल छाया में	४१	६३
४२–बादल री	४२	६४-६५
४३–बोल कहीं बोल	४३	६६
४४–पथ अनन्त में भटक गया है	४४	६७-६८
४५ मेघ मलिन दिन-रात	४५	६९
४६–कहे आज कोई	४६	७०
४७-मेघ तुम्हीं हो	४७	७१
४८–मेरी साँसें ही गीत	४८	७२-७३
४९–निष्फल नहीं मेघ का आना	४९	७४-७५
५०–मेघ भरे	५०	७६
५१–मेरा गान	५१	७७ ७८

सङ्गिनी छाया को

रिमझिम

(१)

ऐसे ही कोई पाँच-सात सौ गीत, पिछले पन्द्रह वर्षों में, लिखे होंगे। अवश्य ये उनके प्रतीक नहीं, प्रकार हैं।

'गीत' मुक्तक-काव्य का सबसे विकसित रूप है। अतः ये गीत अपने आप में सम्पूर्ण हैं। इन्हें सापेक्ष रूप में देखना निष्फल है। फिर भी मेरे मानसिक किंवा बौद्धिक आरोह-अवरोह की परीक्षा के लिए पर्याप्त अवकाश रहता है और इस में काल-कृत व्यवधान भी सहायक सिद्ध हो सकता है।

वस्तु तथा अभिव्यक्ति में सामञ्जस्य रहने पर साधारणी करण की प्रक्रिया अनायास सिद्ध हो जाती है, उसके लिए पृथक् प्रयत्न अनिवार्य्य नहीं होता;—जनता को सामने रखकर गीत रचने की सतर्कता नहीं निभानी पड़ती। और निभाना भी क्या? उससे उपर्युक्त सामञ्जस्य तो घटित होता नहीं! वह तो तभी घटित होता है जब वस्तु शत-प्रति-शत मानवीय हो; मानव-मन की निजी भावना या अनुभूति-सी प्रतीत होनेवाली हो; उसमें कवि की वैयक्तिकता या विशेषता कम से कम हो, और अभिव्यक्ति भी स्वतःस्फूर्त-सी ही स्वाभाविक हो। ऐसा होने पर कवि पाठक के स्तर तक अज्ञात रूप से उतर आता है; उसके हृदय को अपने हृदय से ही छू कर पुलकित कर देता है। चण्डीदास, सूर, मीरा आदि इसी प्रकार के गीत-कार हैं।

पर, एक तो इन नामों के साथ अनन्वय अलङ्कार जुड़ा है; दूसरे जन-मन के देश-काल-कृत क्रमिक विकास का इतिहास भी अभि-

व्यक्ति की वक्रता को प्रश्रय देता पाया जाता है जिससे एक प्रत्यक्ष लाभ यह भी होता है कि वस्तु पुनरुक्त नहीं होने पाती। ऋतु-विशेष के पत्र-पुष्प उद्यान को नित-नूतन बनाए रहते हैं।

अभिव्यक्ति की वक्रता अन्ततोगत्वा बौद्धिक विकास की सूचक है। उसमें एक ही दोष ढूँढ़ा जा सकता है, वह सर्व साधारण से सामान्य रूप से उपभोग्य नहीं होती। निश्चय ही मूल्य आँकनेवालों का एक दल इसे दोष नहीं, गुण मानता है। वस्तुतः शिक्षा की उच्चावचता या संस्कार-जन्य विशेषता भी रुचि की नियामक हो जाती है।

हिन्दी में तो मुझे निराला जी लाए, पहले मैं संस्कृत में ही नई शैली के गीत लिखा करता था। मेरे—

'*निनादय नवीनामये वाणि, वीणाम्*' ने उन दिनों अद्भुत प्रसिद्धि प्राप्त की थी। संस्कृत में भी मैंने कतिपय मेघगीत लिखे थे:—

'*नील जलद, जलमुज्ज्वलमानय;*
त्रिभुवन-तापमुदार, निवारय !

अथवा

'*अधुना नयनयो र्न हि वारि,*
गीतमद्य न निर्गमिष्यति
भुवन-मोहन-कारि !'

अथवा

'*कादम्बिनी त्वमसि किम् ?*
मद्दयिताया नाम वर्तते तेऽपि,
ततो नु हससि किम् ?'

यह संस्कृत-साधना सन् '३५ तक चलती रही थी। फिर '३६ में मेरे दो मेघगीत '**वीणा**' और '**माधुरी**' में प्रकाशित हुए थे—

इसी वर्ष मैं हिन्दी-भारती का सेवा-व्रती बना था। प्रस्तुत संग्रह में वे दोनों गीत (२२-२४) भी उस प्रारम्भिक स्मृति के रक्षार्थ ही सन्निविष्ट हैं।

यह ठीक है कि '३६ से '५० तक के गीतों में भाषागत क्रमिक विकास भी लक्षित होता है; पर :—

'बहुत उतार-चढ़ाव, थके तुम;
किन्तु लक्ष्य तक पहुँच सके तुम ?
आओ, इस धुँधले समतल पर—
सञ्चित प्राण करो काया में !
मेघों की शीतल छाया में !!' —'५०

—ऐसे गीतों में प्रसरणशीलता (Communication) चाहे जितनी बढ़ी हो,

—*'स्वर्ग-सर कौन तुम स्वस्ति-सी, मुक्ति-सी ?'* —'३६

में भी भावना अपनी गहनता के अनुरूप ही वाणी पा गई है।

मैं यही बात छायावाद से आगे बढ़े हुए सभी कवियों में पाता हूँ। वे भाषा भले ही अधिक स्पष्ट लिखने लगे हों; किन्तु सौन्दर्य्य-गहन भावनाओं के ग्रहण या अभिव्यञ्जन में छाया-युग की छाया भी नहीं छू पाते।

'बादल री' (४२ वें गीत) में जिस सौन्दर्य्य-चेतना की झाँकी है, उसके अनुसार—

'चरण-चाप उस अ-तनु-वरण की
फूल-पात चल री !'

या

'वेणु बजाऊँगा सुनने को
झंकृत पायल री !'

से अधिक प्राञ्जल अभिव्यक्ति मेरे लिए अतर्क्य है। फिर भी भाषा की सुबोधता की दृष्टि से 'उतर रेत में' (३६ वें गीत) की व्यङ्गोक्ति ही आपाततः विशेष तीक्ष्ण प्रतीत होगी:—

ऊपर-ऊपर पी जाते हैं, जो पीनेवाले हैं,
कहते,—ऐसे ही जीते हैं, जो जीनेवाले हैं !

थवा

जनता धरती पर बैठी है, नभ में मञ्च खड़ा है,
जो जितनी है दूर मही से, उतना वही बड़ा है !

मैं दृढ़ता पूर्वक यह अनुभव करता हूँ कि भाव अपने सहज निर्गम के योग्य वाग्द्वार स्वयं उद्घाटित कर लेते हैं। अतः अलङ्कृत या गहन भाषा पर कटाक्ष करने से पहले अलंकृत या गहन भावों का भी सन्धान करना चाहिए। यह तो रचनात्मक अनुभव से हीन व्यक्ति का हठ-धर्म ही होगा कि वह कविता की सरलता का अर्थ ठेठ हिन्दी का ठाठ भर समझे रहे।

गीतों में सङ्गीत (गीत, नृत्य, वाद्य) – तत्त्व का मैं आग्रही रहा हूँ—जब भी गद्य तक को गा लेता हूँ। पर तालों के अनुपाती सुर-लय से निनादित वातावरण में भावों को जब 'नव नभ, नव पर' मिलने की संभावना हो तब मैं नभ को मिट्टी बनाने या पर को कतर देने का 'सरल-नियम' नहीं निभाता। कारण, वहाँ मैं अनुभव करता हूँ, भावों ने स्वयं वाग्द्वार उद्घाटित कर लिया है; और यह भी कि यदि मेरा विवेचक इस सदागतिता में उन्हें सहायता नहीं दे सकता तो उसे उन्हें पथभ्रष्ट कर देने का क्या अधिकार है ? न हो प्रसाद या माधुर्य्य; ओज भी तो गुण है !

संग्रह का पाँचवाँ (झलमल-मुक्तादल) गीत जयदेव या विद्यापति का-सा पद-सौष्ठव खड़ी बोली में दरसाने के विशेष अभिप्राय से ही निर्मित हुआ था :—

सरित भरित-रस चली समद-पद
जलनिधि-पद बल खाती,
उमग-उमग मग पर डगमग पग धर,
कल-कल स्वर गाती;
झुलते खुल-खुल मुकुल कोर पर,
हवा मचलती चलती—
लता-परी की सुरभि-भरी
प्यारी सारी सरकाती !' —'३८

एक आलोचक ने राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के—'लो, नील-नभस्सर में उतरा' से इसके पहले बंद की तुलना की है। एक बार निराला जी ने भी कवीन्द्र रवीन्द्र से बिहारी की तुलना की थी।

सातवें और नवें गीत की रचना नृत्य की भङ्गिमाओं पर हुई थी। तब मैं रायगढ़ में राजकवि था— जहाँ भरत के नाट्यशास्त्र के समान एक नवीन नृत्य-शास्त्र (नर्त्तन-सर्वस्वम्) का निर्माण हो रहा था। उन दिनों कितने ही ऐसे श्लोकों और गीतों की रचना मुझे करनी पड़ी थी जिनमें न केवल नाद या बोल अपेक्षित होता था प्रत्युत भावाभिनय के योग्य विविध भङ्गियों का निर्देश भी करना पड़ता था। मेरा "राधा-लास्यम्" (मङ्गलाचरण के रूप में निर्मित होने पर भी) उन्हीं में से एक है:—

"ज्योत्स्ना-स्नाते निशीथे,
किसलय-शयिते मर्मरे स्निग्ध-सान्द्रे,

चान्द्रम्पीयूषमाचामति चटुल—
चलच्चञ्चु -- चञ्चच्चकोरे,
वेल्लत्कल्लोलमाला-कलकल-
कलिते यामुने काम्य – कूले,
मन्दं मन्दं कदम्बं स्पृशति
मधुमये माधवीये समीरे,
'किं किं किं' किङ्किणीना,
करण करण-रणनं कङ्करण-द्वन्द्व-बन्धि,
श्रावं श्रावं विरावं चल-चरण—
मिलन्मञ्जु - मञ्जीर - जातम्
लीलाशीलालि-लोलत्करतल—
कलितोत्ताल - ताल, सहास्यं
लास्यं श्रीराधिकाया स्तिरयतु
दुरितं मानसं मानवानाम्।"

मैंने ऐसे ही नाद की सृष्टि—

'मेघ-रन्ध्र में मन्द्र-सान्द्र ध्वनि
द्रिम-द्रिम-द्रिम उन्मद मृदङ्ग की' में करनी चाही थी। इसी प्रकार नाट्य-गति को चित्र देने का प्रयास—

'सुरधनु की सतरंगी चुनरी
झंझा के झोंकों पर फहरी'—जैसे गीतों में लक्षित होगा। मैं समझता हूँ, इन गीतों का सङ्गीत के माध्यम से भी रसास्वादन किया जा सकता है।

इसे विविधता का व्यामोह ही कहिए कि ऋग्वेद, वाल्मीकि

और व्यास के अनुगायन के रूप में भी तीन (३३–३४–३५) गीत यहाँ संगृहीत हैं। बहुत पहले रवीन्द्रनाथ की कतिपय कविताओं (उर्वशी, रात्रे ओ प्रभाते आदि) के संस्कृत-पद्यानुवाद मैंने पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कराए थे; फिर निराला जी की 'जुही की कली' "शेफाली" आदि के संस्कृत-गद्यानुवाद अपने 'प्राच्य-साहित्यम्' के उपसंहार में दिए। कदाचित् सर्वोपरि विनोद के योग्य मेरा वह प्रयास था जो मैंने अपने हिन्दी-गीतों को अंग्रेजी रूपान्तर देना चाहा था :—

You have covered the pond over with a host of golden lilies, that is why its water is growing muddier and mossier day by day.

You have covered the guitar over with a over-flowing stream of hevenly music, that is why its own tame tune is craving for a fine spontaneous flow day by day.

अथवा

जहाँ छोड़ कर मुझे गए थे,
वहीं अभी तक बैठा हूँ;
तुम तो बहुत बदल कर आए,
मेरा परिचय नया नहीं!

× ×

बाट बताऊँ किधर हाट की?
भूल गए तुम आ-जा कर;
मुझे न कुछ लेना-देना था,
मैं तो अबतक गया नहीं!

का अनुवाद मैंने इस प्रकार किया था:—

Still do I wait here, here had you left me all alone when you parted last.

You have come back with many a strange changes in you and I am the same; just the same.

× × ×

Are you requiring of me the way leading to the market ? what an idea ! Have you forgotten it too even though trodden a good many times ?

Forgive me then my love, I do not know any. I went nowhere since your last departure, as I had to do nothing with this and that.

कुछ ऐसी ही दशा वर्ड्सवर्थ के 'कक्कू', शेली के 'स्काइलार्क' और कीट्स के 'नाइटिंगेल' के हिन्दी-पद्यानुवाद की हुई। चण्डीदास के— *सइ, केमन धरिबो हिये ?*

आमार बँधुआ आन बाड़ी जाय,
आमार आङ्गन दिये ?

का रूपान्तर

'सखि, यह दुःसह दुख मीच से !
मेरा प्रियतम जाता पर-घर
मेरे आगन के बीच से !'

भी प्रीतिकर न हुआ; किन्तु इस बार आदिकवि के—

मेघोदर - विनिर्मुक्ताः कर्पूर - दल - शीतलाः
शक्यमञ्जलिभिः पातुं वाताः केतकगन्धिनः

का अनुवाद—

'यह हवा बीच से चली सजल मेघों के—
उदी - उदी, इठलाती, खाती झोंके,
इतनी ठंडी कि कपूर - तुहिन - छवि छीनी,
भरती सुगन्ध केतक की भीनी - भीनी,
—अञ्जलि भर - भर पीने को जी ललचाया !
पावस का कैसा समय सलोना आया !!

मेरे मन को निश्चय ही भाया और—

मुक्तासकाशं सलिलं पतद्वै
सुनिर्मलं पत्रपुटेषु लग्नम्
हृष्टा विवर्णच्छदना विहङ्गाः
सुरेन्द्रदत्तं तृषिताः पिबन्ति

का यह अनुगायन—

जो पत्र-पुटों पर टप-टप टपक-टपक कर—
आता जल; विहगों का दल लपक-झपक कर—
है उसे पी रहा झुक-झुक, उझक-उझक कर,
गीले डैने फड़का, सुलझा उलझे पर,
कोई प्यासा, कोई बिन - पिए अघाया !
पावस का कैसा समय सलोना आया !!

तो जैसे अन्तर के स्तर-स्तर को छू गया और तब मैंने यहाँ तक सोच लिया कि मन की यह समाहित स्थिति यदि स्थायित्व लाभ कर सकती तो मैं आदिकवि की सम्पूर्ण वाणी को हिन्दी-स्वर झरती वीणा से विनोदित करता।

ऐसा ही उल्लास एक बार और हुआ था जब कविवर मुकुटधर पाण्डेय से मेरी प्रशंसाएँ सुनकर रायगढ़- नरेश ने सुप्रसिद्ध शेर 'जब जरा गर्दन झुकाई, देख ली' को संस्कृत में कहने को कहा था और मैंने तत्काल ही उसे—

प्रति-ग्रीवा-भङ्गं नयन-सुख-सङ्गं जनयति !

के रूप में परिवर्तित कर दिया था।

(२)

आज जब कविता को 'विकसित मनुष्यता' से बहिष्कृत कर देने का प्रस्ताव पास होने लगा है;— 'जीवन की प्रगति' के क्रम में उसे विरोधी तत्त्व तक उद्घोषित करने के लिए गला साफ किया जाने लगा है, तब इन स्वीकृत सरणि के मानसिक अनुरणनों (गीतों) पर मेरी व्याख्यात मान्यताओं का प्रयोग परिणाम-शून्य ही होगा। फिर भी मेरे लिए यह विषाद का विषय नहीं कि मैं नए-नए प्रयोगों के युग का कवि हो कर भी परम्परा से परे नहीं हो सका, कारण, मेरी दृष्टि में 'परम्परा' धारावाहिक विकास का ही सङ्कलन है और उस पर स्थित आस्था आप प्रगति-प्रवाहिनी होती है।

भाषा के झकझोर देने या प्रतीकों के आमूल परिवर्तित कर देने मात्र से जिस अनोखेपन की सृष्टि होती है वह—

'सलिल-निधिरिव प्रतिक्षणं मे ,
भवति स एव नवो नवोऽयमक्ष्णोः'

कदापि नहीं। सम्भव है, कभी वस्तु-विज्ञान भी रसात्मक हो उठे; किन्तु 'प्रेम-लपेटे अटपटे बैन' को तो विज्ञान की कसौटी पर घिस कर कभी नहीं निखारा जा सकता।

मैं समझता हूँ, यदि मनुष्य को अर्थ-युद्ध में जूझते हुए ही नहीं मर जाना है तो उसे काम करते हुए और निष्काम विश्राम-बेला में भी गाने की आरजू अवश्य होगी और तब वह बौद्धिक बकवास की तुकबंदियाँ न पिनपिना कर प्राण-गान ही गाएगा।

बहुत दिन पहले अरिस्टाटल ने कला को प्रकृति की अनुकृति कहा था। अनेकविध संशोधनों के अनन्तर भी अब तक उस सिद्धान्त की स्थिरता में विशेष अन्तर नहीं आया। अब भी पाश्चात्य संगीत पशु-पक्षियों की बोली, पत्तों की मर्मर ध्वनि, बादलों की गड़-गड़ाहट, हिल्लोलों के कल्लोल, नदी-नालों के कलकल-छलछल को संगीत में स्थान देता है, अवश्य प्राच्य पद्धति के (आधुनिक) भारतीय संगीत (Classical music) में इस स्वर-समारोह के लिए कोई विशेष स्थान नहीं; ‡ किन्तु प्राचीन संगीत शास्त्र —

षड्जं वदति मयूरो वृषो रम्भति चर्षभम्
अजा वदति गान्धारं, क्रौञ्चो वदति मध्यमम्
पुष्प-साधारणे काले कोकिलो वक्ति पञ्चमम्
अश्वस्तु धैवतं वक्ति निषादं वक्ति कुञ्जरः

× ×

मयूरचातकच्छागक्रौञ्चकोकिलदर्दुराः
गजश्च सप्त षड्जादीन् क्रमादुच्चारयन्त्यमी

---

‡ Imitation of the cries of birds and beasts, of the rustling of the leaves or the thundering of the clouds, of the surging of the billows or of the roaring of a brook, counts as musical performance in the west; whereas such performance has no place in Indian music.

—रानाडे

पशु-पक्षियों में सातों सुरों की पहचान बतलाता है, और कालिदास-जैसे महान कलाकार ने—

'षड्जसंवादिनीः केका द्विधा भिन्नाः शिखण्डिभिः'

लिखकर इस स्वर-परिचय को और भी प्रगाढ़ कर दिया है। अस्तु, राग-रागिनियों के निजी नियम-उपनियमों से बंधे रहने के कारण भारतीय-संगीत क्रमशः अन्तर्मुख होता गया है और जिस प्रकार पिछले खेवे के कवियों ने अनुप्रास और यमक को ही काव्य मान लिया था, आज दिन कतिपय रूढ़ संगीतज्ञ बोलतान के सरगम का सपाटे का पाठ सुना कर ही उच्च संगीत का सत्त्व, महत्त्व उद्घोषित करते हैं। * फिर भी पश्चिमी संगीत की अपेक्षा भारतीय,

---

* मनुष्य-समाज ज्यों-ज्यों प्रकृति पर विजय प्राप्त करता गया त्यों-त्यों उससे दूर भी होता गया है। प्रकृति की अनुकृति में जिस सहजता और सादगी की आवश्यकता अनिवार्य्य हो उठती है उसे उसी सरलता से ग्रहण करने की नैसर्गिक प्रतिभा वह अपनी तथा-कथित विकसित अवस्था के साथ क्रमशः खोता गया है। प्रकृति के सहज स्वरूप में जो स्वस्थ, पवित्र भाव-भावना है उसे उसका 'अहं' नहीं सहन कर सका है। मयूर की केका-वाणी के षड्ज और कोकिल की काकली के पंचम में उसे एक ऐसी एकरसता अनुभूत होने लगी कि उसकी 'कृत्रिम प्रवृत्ति' को कला की उपाधि धारण कर द्रुत, मध्य और विलम्बित लयों,—स्वरों के शुद्ध, तीव्र, कोमल रूपों का सहारा लेकर, आरोह-अवरोह के बँधे-सधे नियमों का निर्माण कर 'संगीत' की अपूर्व भाव भङ्गिमा को साकार करना पड़ा। नाद

संगीत में वैयक्तिक प्रतिभा के स्वतन्त्र विकास का अवकाश अधिक रहता है, क्योंकि यह केवल राग-रागिनियों की मर्य्यादाओं से ही अनुशासित होता है, † पाश्चात्य प्रणाली के 'आर्केस्ट्रा' से शासित

अपने रूप में आनन्द खो कर जैसे नाद-विद्या के रूप में मनुष्य की प्रियता का अनुसरण करने लगा।

सुस्पष्ट शब्दों में इसे यों भी कहा जा सकता है कि ईश्वरीय दान से मानव-मन चिर काल तक सन्तुष्ट न रह सका और वह उसमें कुछ अपनी ओर से भी जोड़ने लगा। ईश्वर की ओर से जो सृष्टि के आरम्भ में प्राप्त हुआ था वह अब तक एक-रस, एक रूप है, उसमें कभी घट-बढ़ नहीं हुई; मनुष्य ने जो अपनी ओर से जोड़ना प्रारम्भ किया है, उसका कहीं अन्त ही नहीं दिखलाई देता। 'क्लासिकल' 'ओरिएन्टल', 'माडर्न', 'अल्टा माडर्न', ध्रुपद, ख्याल, ठुमरी आदि कितनी ही कक्षाओं से नई-नई प्रणालियों का जन्म होता रहा है। अर्थात् कला-प्रिय मानव-मन भाँति-भाँति प्रकारों से नए-नए चमत्कार ढूँढ़ निकालने को नित्य-नित्य आकुल-व्याकुल है; किन्तु फिर भी यह 'चमत्कार' वह 'आनन्द' नहीं है जो समरस रहकर चिर-नवीन हुआ करता है—प्रत्येक प्रभात की भाँति नित-नूतन संदेश लाता है; प्रत्येक सन्ध्या की भाँति शत-शत झिलमिल सपने बिखेर जाता है।

—जा० व० शास्त्री

† संयम और शृङ्खला में अत्यधिक अन्तर है। प्रथम को साधना द्वारा प्राप्त करना होता है और द्वितीय से मुक्ति प्राप्त करने की छटपटाहट प्रत्येक स्वस्थ-सन्तुलित मस्तिष्क में बनी रहती है। 'शुद्ध आनन्द' के निकट से निकटतर पहुँचने के लिए जो ग्रहण-वर्जन संयम

कदापि नहीं। यही कारण है कि यहाँ राग-पद्धति में रस-बोध अपने ही भीतर से होता है; गमक, तान, मीड़, आलाप आदि काव्य-जन्य रस के संचारी भाव के समान प्रयुक्त होते हैं। तभी अपने शुद्ध शास्त्रीय रूप में भारतीय संगीत काव्य की अत्यन्त अपेक्षा नहीं करता। हाँ, जहाँ काव्य को खपाना जरूरी समझा जाता है वहाँ उस काव्य के कंचन को एक खास कसौटी पर कसना भी पड़ता है।

के रूप में अनिवार्य्य है उससे हट जाने पर तो च्युत, स्खलित होने की अकीर्त्ति ही लब्ध हो सकती है; किन्तु रूढ़ि को संयम समझने की भूल भी न करनी चाहिए। रूढ़ि रूढ़ि है, उसे तोड़ कर ही सम्पूर्ण स्वास्थ्य का आश्वासन मिल सकता है।

विशेष राग-रागिनियों के लिए समय-विशेष का बन्धन प्रारम्भिक शिक्षा के लिए उपयोगी है, क्योंकि उससे अनुशासन का अभ्यास होता है और निर्मर्याद होने की विभीषिका मिटती है; किन्तु वह वस्तुतः, मेरे विचार से, रूढ़ि के अतिरिक्त और कुछ नहीं। भैरवी प्रातः काल ही गाई जाय और वागीश्वरी, विहाग आदि रात्रि के द्वितीय प्रहर में, यह सब संस्कार मात्र है। कुछ पुराने साहित्यिक 'वियोगिनी' छन्द में करुण रस को अधिक तीव्र और प्रभावपूर्ण पाते थे, यह कालिदास के 'अज विलाप' और 'रति विलाप' से ढूँढ़ी रूढ़ि थी जिसका मेरुदण्ड भवभूति ने तोड़ कर दिखला दिया था कि व्यास-वाल्मीकि के अतिरिक्त स्वयं वह भी रस-सृष्टि के लिए छन्दोबन्धन का अन्ध विश्वासी नहीं।

—जा० व० शास्त्री

निराला जी की गीतिका में आरम्भ ही से अनेक विरुद्ध आकार प्रकार के गीत देखने को मिलते हैं—विशुद्ध दार्शनिक और शृङ्गार रसात्मक, अति तीव्र और गुरु गभीर; अलङ्कार-खचित और निराभरण। कहीं तो वेदान्त का रूक्ष अद्वैतवाद काव्य के कमनीय कलेवर में, कोमल कान्ति धारण कर प्रकट हुआ है और कहीं दर्शन की दिव्य ज्योति रमणी की रमणीयता बनकर कविता की आत्मा को जगमगा रही है। कहीं कठिन साधना-शिला से पिष्ट प्रणय की बाँकी झाँकी है और कहीं गोधूलि के मटमैले प्रकाश में, निराशा से झुकी हुई गीली पलकों का छाया-चित्र। कहीं मृदंग का मङ्गल निनाद है और कहीं प्राण-वल्लकी के तारों की मदिर-मधुर झंकार। कहने का तात्पर्य यह कि इसमें महादेवी वर्मा के गीतों की तरह एक ही भाव की विविध-रूपता नहीं; किन्तु वस्तुतः विभिन्न स्थितियाँ हैं और कहीं-कहीं तो एक ही एक में आश्चर्यकर अनेकता है।

कदाचित् यह ऐसा इसलिए है कि कवि को, कोई एक ही रूप, एक ही स्थिति, एक ही पक्ष जम कर देखते रहना पसन्द नहीं है; वह हँसी के साथ आँसू को, विरह के साथ मिलन को, सौन्दर्य्य के साथ जीवन को, मृत्यु के साथ मुक्ति को और आरम्भ के साथ परिणति को मिलाकर निरखता है; जीवन की जिस पङ्किल पगडंडी पर पल भर पग रखता है उसी पर अपनी अमिट छाप छोड़ देता है। इसीलिए काव्य-गत चित्रण में रेखा के साथ रंग, रंग के साथ सङ्गीत और संगीत के साथ स्वयं वह मिल गया है। उसने सब गीतों के केन्द्र में अपने को बिठलाकर, और फिर एक क्षण चित्रण, वर्णन और सङ्गीत सब से पृथक् होकर परखा है—उसका स्वर निषाद में साफ

है या गान्धार में; उसकी तड़ित् तूलिका जड़ प्रकृति को सजीव कर सकी है या सजीव सत्ता को सजग; उसका रूप-निर्माण सफल हुआ है या प्राण-प्रतिष्ठा; उसकी अनुभूति ओजस्विनी है या कल्पना; उसकी वासना तीव्र है या साधना; वह गा सका है, रंग भर सका है या निर्माता भी है—इन्हीं अनेक सूक्ष्म परीक्षाओं का निष्कर्ष गीतिका के वर्ण और भाव, ओज और माधुर्य्य, छन्द और सङ्गीत की विविधता में व्यक्त है।

किन्तु जिसने जीवन के एक ही पक्ष का मनन-चिन्तन किया है, अपने को उसी में एकाकार कर दिया है, उस साधिका के गीत यदि गीतिका के करुण गीतों से कुछ अधिक सजल हुए हैं तो इसमें आश्चर्य्य की कोई बात नहीं। सच तो यह कि गीतिकाकार के बाद गीत-रचना महादेवी की ही सत्य-सफल है।

प्रसाद और पन्त के गान परिमाण में अल्प होकर भी निर्माण में महान् हैं। रामकुमार वर्मा के गीत भी भाषा की सरलता और अनोखी उपमाओं की दृष्टि से अनुपम रहे हैं। वस्तुतः थोड़ी-सी अनगढ़ राष्ट्रिय कविताओं के अतिरिक्त इस युग की सम्पूर्ण काव्य-साधना ही गीतात्मक है। ऐसे में मैं अपनी विडम्बित गीत-सृष्टि के लिए पृथक् क्या कुछ कहूँ? निराला की वैधानिक एवं वस्तुनिष्ठ विविधताओं के आगे अभी कोई नहीं गया। मेरे पूरे 'मेघगीत' में 'बादल-राग' का-सा एक भी स्वर नहीं है।

मुजफ्फरपुर
रामनवमी '२००८

—श्रीजानकीवल्लभ शास्त्री

१

मीरा की करूँ बड़ाई !
मन में आई याद; नयन में—
सजल श्याम - छवि छाई !

× × ×

अणु - अणु मसके; रस के सींचे—
सुर, धुन से उर - प्राण पसीजे;
अलख मखा लख बादल रीझे,
बिजली ले अँगड़ाई !
मीरा की करूँ बड़ाई !!

उगे पुलक हरियाली फिर-फिर,
आएँ और घटाएँ घिर-घिर,
भू पर रिमझिम; ऊपर झिर-झिर—
पछवा या पुरवाई !
मीरा की करूँ बड़ाई !!

तिमिर-सिन्धु हो नील-तरङ्गित,
सुरधनु के पुलिनों से चुम्बित;
झिलमिल खद्योतों से द्योतित—
अन्तर्मणि की झाँई !
मीरा की करूँ बड़ाई !!

× ×

मैं अपने सपने में जग कर—
निरख रहा नीरव भव-अन्तर,
है किस सुख-सुषमा के भीतर—
कैसी कसक समाई !
मीरा की करूँ बड़ाई !!

१४५

२

पावस की ऋतु प्यारी-प्यारी !
भरे-भरे दृग भारी-भारी !!

नए-नए घन उनए-उनए,
तन-मन सावन-गगन बन गए;
निम्नग नीर हुआ नभचारी !
पावस की ऋतु प्यारी-प्यारी !!

श्यामल छाया झीनी-झीनी,
छिपे चञ्चला की रंगीनी ?
जगमग होती जगती सारी !
पावस की ऋतु प्यारी-प्यारी !!

अन्धकार भी यह मनभावन,
रोना; किन्तु सलोना सावन !
नर निदाघ की वर्षा नारी !
पावस की ऋतु प्यारी - प्यारी !!

× × ×

बीतीं विवश अवधि की घड़ियाँ,
टूट गईं मोती की लड़ियाँ ;
अब मेरे झरने की बारी !
पावस की ऋतु प्यारी - प्यारी !!

'५८

३

सावन की नीर - भरी बदरी !
पिच्छिल पथ पर डगमग - डगमग
हो जाते मृदु - मृदु, लघु - लघु पग,
वह पवन - पंख से उड़ आई—
सुकुमार, सुन्दरी श्याम - परी !
सावन की नीर - भरी बदरी !!

पावस का रस - सागर अनन्त—
उमड़ा; डूबे सब दिग - दिगन्त;
निष्पन्द, मन्द, मन्थर - मन्थर—
तिरती नीलम की नील तरी !
सावन की नीर - भरी बदरी !!

झुलसे मरु में झंझा – झकोर,
ज्यों मूक - हृदय में स्वर - हिलोर !
उजड़े, जड़ नभ में तरल - चपल—
लहराई नव - जीवन - लहरी !
सावन की नीर – भरी बदरी !!

४

उमड़-घुमड़ घन घेर-घेर
अम्बर भर छाए री !

पहन वसन सुरधनुषी, धानी,
बनी वधू नव अवनी रानी;
परदेशी घनश्याम आज—
आँगन में आए री !

पी-पी सुधि के मधु के प्याले,
पलक-पलक में झूले डाले—
सपनों ने अपनों के गाने—
गुन-गुन गाए री !

अश्रु नयन, मुसकान अधर धर,
जलधर ने सुख-दुख के, घर-घर,
स्वर्ग-देश से उतर, सजल—
सन्देश सुनाए री !

५

(स्वा)

झलमल - मुक्तादल - नव - जल - धर—
जलधर - कुन्तल - जाला,
कज्जल - कल,—चपला - चल,—लोचन,
गोरोचन - रुचि - भाला;
विमल - वलाका - 'माला', सुरधनु—
अनुरञ्जित - वर - 'अम्बर',
मदिर - मन्द - मन्थर - गत आगत,
स्वागत पावस - बाला !

(ग)

मणि भरित - रस चली समद - पद
जलनिधि - पद बल खाती,
उमग - उमग मग पर डगमग पग—
धर, कल - कल स्वर गाती;
झुलते खुल - खुल मुकुल कोर पर,
हवा मचलती चलती—
लता - परी की सुरभि - भरी
प्यारी सारी सरकाती !

(त)

अङ्ग - अङ्ग तम - तोम - उन्मुखी—
सोम - मुखी सखियों के—
सुमन - डोर धर मन - हिंडोर पर
भरते पेंगे, झोंके ;
दिङ्मुख मुखर मृदङ्ग - मुरज - रव ,
सिहरी हरी वनाली—
सुन - सुन स्वन कङ्कण - किङ्किणि के ,
शिञ्जन मञ्जीरों के !

(था)

चपल पलक, कलि झलक अलक—
में रही, छलकती चलतीं,
कुल - ललना कुल प्रिय - मिलना ऽऽ कुल,
व्यजन कमल - दल झलतीं:
उन्मद - सी, कविता - पद - सी, वंशी—
स्वर - सी, सरसी - सी,
आपस के, रस के वश, हँस - हँस,
लोल कपोल मसलतीं !

(व)

चम्पक - अङ्गुलि - कम्पित - तार—
सितार बिसार विलीना,
कभी सजाती, कभी बजाती
एक नवीना, वीणा;
मधुर मुरलिका इधर, उधर—
दादुर - सुर, कोमल केका,
मेघ - मलिन दिन, खेल खेलती
रच - रच सेज प्रवीणा!

(स)

बाँह डाल कर नीप - डाल पर,
वसन सँवारे धानी—
बोली एक—"कञ्ज - मुख, खञ्जन -
दृग, तुम शरद सयानी!"
"छिपी छाँह में निज छवि की ही,
पहचानी सौरभ से,
पिक - स्वर, अधर - प्रवाल, बाल - अलि,
तुम वसन्त की रानी!!"

(घा)

सन-सन पवन-झकोर, मोर के
पख हिलोरें लेते,
बाल - बकावलि - पाल, तरल
जलधर-तरणी सुर खेते;
दोल डोलते, खोल नयन—
प्रतिबिम्ब कदम्ब निरखते,
पढ़तीं पाँती, गातीं सखियाँ,
ताल वलय चल देते।

(ला)

"कालिदास के आलि! पास से
फिर वह बादल आया,"
—अलका की विलुलित-अलका-सी
हुलसी पुलकित-काया;
"बहुत बरस पर बरस-बरस रस
भरा धरा पर ऐसा,
सुनो-सुनो सखि! यह सँदेश
किस अलख देश का लाया!"

६

तप्त गगन को सप्त सुरों से भर कर
मेघ गा रहे मङ्गल मेघ-मल्हार !
तान-तान पर तड़ित तड़प उठती है,
प्राण-प्राण में सुरधनु का संभार !!

(१)

मरपत के आहत पत्तों से सरसर
सरक रही-सी मसृण-गात बातास,
फुहियों से सज भरी-भरी लगती है
हरी-हरी नूतन तन्वंगी घास.

आँखों की भींगी पाँखों से पूछो,
मन के नर्तन करने का अधिकार !
तप्त गगन को सप्त सुरों से भर कर
मेघ गा रहे मंगल मेघ-मल्हार !!

(२)

निभृत निशीथ अनभ्र अभ्र-सा लगता
बाल तमाल द्रुमों का कानन श्याम,
ग्रह-तारक ज्योतिःपुञ्जों-से जिसमें
मुकुल विकच बहुवर्ण कुसुम अभिराम,
निर्जन पथ के अगम क्षितिज को पंथी
पूछ जुगुनुओं से है रहा निहार !
तप्त गगन को सप्त सुरों से भर कर
मेघ गा रहे मंगल मेघ-मल्हार !!

(३)

छप-छप, छप-छप छोटी नाव रही चल
अन्धकार का उमड़ा पारावार,
खड़ा-खड़ा क्या सोच रहा है राही ?
फैल रहा झञ्झा का हाहाकार,
रात और होती तट पर टिकने को,
आज पार से आई विकल पुकार !
तप्त गगन को सप्त सुरों से भर कर
मेघ गा रहे मङ्गल मेघ-मल्हार !!

७

मेघ - रन्ध्र में मन्द्र - सान्द्र ध्वनि—
द्रिम - द्रिम - द्रिम उन्मद मृदङ्ग की !

भाद्र - समुद्र - रुद्र - रव - रशना,
नाच रही कस दस - दिशि - वसना,

रिमझिम रिमझिम, रुनझुन - रुनझुन,
छुनकिट तच्छुम रनरन - रुनरुन,
छुम - छुम छननन, झननन - झुनझुन,
मुक्तकेश सरका श्यामाम्बर !
हरित - सस्य - अञ्चल चञ्चलतर !!

ताल - ताल पर उच्छल - उच्छल—
चल जल छलछल टलमल टलमल,
कुलकुल - कुलकुल, कलकल - कलकल,
प्रति - पदगति नति शत - तरङ्ग की !
तडिद भङ्गिमा अङ्ग - अङ्ग की !!

८

बजी आज घन में !
चरण - रणन ध्वनि - प्रतिध्वनि गुँजती जो मन में !!

सर छलका, सरि उमगी, पुलकित अवनी वनी;
टुक झुक - झुक झूम रहा गगन जीवन - धनी,
कौन मौन हेर रहा,—टेर कहाँ वन में !
बजी आज घन में !!

सुर - लय में बँधने को आतुर उर - भावना;
काँध रही, काँप रही, झाँक रही उन्मना,
झर – झर झर बिखर रही यह क्या कण - कण में !
बजी आज घन में !!

९

बादल के पंखों से उड़ कर
सावन की श्याम परी आई !

सुर - धनु की सतरंगी चुनरी
झंझा के झोंकों पर फहरी
पग पायल की धुन छूम-छनन
कङ्कण किङ्किणि के रणन-झनन
उसकी बिजली की धुली हँसी
नभ को छूकर क्षिति पर छाई !

अब तो उदास आकाश नहीं
उर्वी के उर में प्यास, नहीं
वन-उपवन में लेती उसाँस
चलती है चल बातास नहीं
हर ओर तृप्ति, सब ओर शान्ति
चञ्चल अञ्चल से फैलाई !

डाली में हरियाली डाली
कलिका में मधु-मदिरा ढाली
गीले मग पर पग रपट रहे
गिर-गिर उठती है मतवाली
कितना शैशव, कितना यौवन,
कैसी मस्ती, क्या अँगड़ाई !

कजली का कल आलाप सुनो
केका कलाप,—संलाप सुनो
पिक के वसन्त में जो न सुना
चातक का विकल विलाप सुनो
धानी खेतों की ओर भार की
चलो, बुलाती पुरवाई !

बादल के पंखों से उड़कर
सावन की श्याम परी आई !

१०

गोला ही रहता आँचल,
यह बादल के दिन री !

सुमन-भार-नत तरु, वल्लरि, वन,
सौरभ - भार - अधीर समीरण,
प्राण-भार-बेसुध तनु तन, मन,
छन - छन छिन - छिन री !

घिर-घिर तिमिर-तिमिर दिशि-अन्तर,
मिलित आज अलि, अवनी - अम्बर !
साँस ले रही एक अकेली
मैं ही गिन - गिन री !

उथला मानस, ढला, बहा सब,
स्वर्ण-कमल, कलहंस कहाँ अब !
नीरवता ही गूँज रही बन
नूपुर - रिन - रिन री !

११

नए घन नए, सखि, नयन मैं भरूँगी !
विकल वारि की बाल - बूँदें चुराकर—
लगेगी गिराने हवा ज्यों धरा पर,
उठा त्यों ललक कर सघन-मृदु पलक पर—

भरा मन्द पैंगें सकल - श्रम हरूँगी !
कि बिजली जली-सी जलद - बीच से जब
विफल-सी, विकल-सी पड़ेगी निकल, तब—
उसे चूम, मैं, झूम, लूँगी बलैयाँ,

स-बहुमान फिर प्राण में ला धरूँगी !
भला कौन प्रिय वह, निठुर जो न होता !
सुरभि-लुब्ध, आतुर, उपल-उर न होता !
विरह क्या, मनोहर, मधुर जो न होता !

उमड़ता जलधि कृश - करों से तरूँगी !

१२

धुली केश - राशि खुली रहने दे !
मेघ-माल होती मालूम 'उन्हें',—
मन्द्र - मधुर स्वर से यह कहने दे !

मेरी मुख - सुषमा नव चपला - सी
कौंध - कौंध जाती बादल - दल में,
'वह' कहते, जुगनू की ज्योति - छटा
मोती - से दाँतों की झलमल में !

धार सुधा की वसुधा भर बरसे,—
अधर - फँसी प्यार - हँसी बहने दे !

रङ्ग की तरङ्ग इन्द्र के धनु के,
अङ्ग - अङ्ग से, उमंग से, निखरी;
रश्मि - भार रत्न - हार तार - तरल,
धानी परिधान, कञ्चुकी उभरी,—

भर रहे भादों यों, 'वह' कहने,—
राग - द्वेष क्यों, सुहाग सहने दे !

१३

अब उमड़ो - घुमड़ो घन,
मेरे जीवन - धन घर आए !
प्रीत - रीत पहचान गए,
तुमने जो गीत सुनाए !!

यह कैसी बरसात, रात - दिन घुल - मिल एकाकार,
अन्धकार आलोक लुटाता, लोक स्वर्ग साकार !
अपरिमाण रँग - रूप - गन्ध—
रस - परस - प्राण बरसाए !

अग - जग सुख से छलक रहा है; किन्तु मुझे दुख होता,
मुसकाती प्रियतम के मुख पर, अन्तर तम में रोता,

यह क्या, वह आए, पर तुम - सा
बन्धु बिछुड़ कर जाए !
अब सब दिन उमड़ो - घुमड़ो घन,
बड़े भाग, वे आए !!

१४

घन बन मन के पाहुन आए !
करुण-मधुर सुर के बदले
गरजे, तरजे, घहराए !

आग लगे ऐसे सुहाग में,
मुए भाग में मेरे;
'पी कहाँ, कहाँ पी !' की धुन सुन
निठुर वज्र बरसाए !

यही कोप, क्यों जली, गली मैं,
यौवन दलित बनाया !
पीत बदन पर धानी चुनरी
शव – शृङ्गार लजाए !

१५

मेघ के दिन किस तरह कोई बिताए !

अचल पलकें यदि मुँदें, कर बंद पाएँ
घिर रहीं जो शून्य मन में घन घटाएँ;
अवनि - अम्बर भर अगर जाए तिमिर से—

रैन में किस ठौर कोई चैन पाए !
मेघ के दिन किस तरह कोई बिताए !!

भर गला जाए, भला कुछ याद आए,
मौन सुर में कौन उर में गुनगुनाए !
पर कँपाए 'पी कहाँ' वातावरण जो—

त्राण पाने प्राण किसकी शरण जाए !
मेघ के दिन किस तरह कोई बिताए !!

१६

गागर भर कर घर को ओर चली
बीच गली में खड़ी, झड़ी से घिर !

लोग - बाग ताकने लगे अपलक,
व्यस्त - बाँह छाँह में छिपी छन भर;
फूट रही थी बुद्बुद् - सी भीतर,
टूट रही बिन्दु - लड़ी - सी बाहर;

बह रही बयार थी फुहार - भरी
फहराए आँचल पर से फिर - फिर !

गागर भर कर घर की ओर चली
बीच गली में खड़ी, झड़ी से घिर !!

मन कहता– बढ़ चलो, चलो घर ही,
तन कहता— मैं तो पानी-पानी,
फोड़ कर अगर न, छोड़ कर चल दो,
बरस रही थी कहीं सरस वाणी,

क्या करती, देहरी रही धरती,
मेघ गगन में रहे मगन फिर-फिर !
गागर भर कर घर की ओर चली
बीच गली में खड़ी, झड़ी से घिर !!

१४७

१७

अन्धकार - सघन - गगन आज रे !

आओ, आँगन में, सखि, आओ,
झूम - झूम, झुक - झुक, टुक गाओ,
रोज - रोज रहता गृह - काज रे !
अन्धकार - सघन - गगन आज रे !!

धारा झरती झर - झर झर - झर,
भीगा मेरा आँचल, अम्बर,
आज सजा कैसा यह साज रे !
अन्धकार - सघन - गगन आज रे !!

× × ×

वहां भी घिरे होंगे ये घन,
वहां भी भरा होगा सावन,
कितनी निष्ठुर 'उनकी' लाज रे !
अन्धकार - सघन - गगन आज रे !!

'३६

१८

जो तुम आए नहीं, मेघ क्या करने आए !
वन में वेणु बजा न, गगन भर गर्जन लाए !

धार-धार ऊपर से बरसा जाने वाले—
काले-काले मेघ छीलते गीले छाले,

सूर्य-चन्द्र के दीप पवन क्यों कर न बुझाए !
जो तुम आए नहीं, न कैसे तम छा जाए !

लाख पुकारे चातक, है क्या सुनने वाला ?
कोयल कुहके, कौन कहाँ सिर धुनने वाला ?

सूने घर-आँगन में क्या बरसात सुहाए !
जो तुम आए नहीं, कौन क्या बात बताए ?

मैं क्या देखूँ इन्द्रधनुष, तेरी रंगीनी,
कब कम चटकीली थी मेरी चुनरी झीनी ?

अब के धरती पर पागल घन नाव चलाए !
जो तुम आए नहीं, सिन्धु कैसे लहराए !

१६

एक यही आस, तुम पुकारोगे !
प्रीत जीत जायगी कभी न कभी,
निष्ठुर, तुम हारोगे, हारोगे !

हो सकता, पावस का प्रथम दिवस,
यक्ष-सा तुम्हें न करे विकल, विवश,
प्रथममास, सुभग, लगे नयन - विरम,
मारोगे मन, मुझे बिसारोगे !
किन्तु आस, फिर मुझे पुकारोगे !!

सावन में श्याम घटा छाएगी,
पी की रट चातकी लगाएगी,
आएगी; मेरी सुध आएगी,
शूल चुभो भूल तुम सुधारोगे !
निर्मम, तुम हारोगे, हारोगे !

भादों में भले चले आओगे,
भरे गले से बुला लजाओगे,
किन्तु मुझे तब तन में पाओगे ?
तरणि डुबो हाय ! किसे तारोगे ?
निष्ठुर, तुम हारोगे, हारोगे !

'४५

२०

इतनी घनी घटा घिर आई,
सुमन न पढ़ने भी जा पाई!
अन्धकार ने डगर डुबो दी,
मुसलधार वर्षा ने—
गोवर्धन - धर - रहित बनाया
नन्दगाँव, बरसाने!
अगर - मगर में नगर पड़ गया,
सहमी रही, नहीं मुसकाई!

× × ×

"जब तक विद्यालय न बंद हो,
बंद न हों ये झड़ियाँ,
अनायास अवकाश, युक्ति से
मुक्ति दिलातीं कड़ियाँ!
यह अमूल्य विश्राम, श्याम - घन,"
—मन ने पहली कजली गाई!

२१

बादल चल - जीवन की छलना !

जिसे सहारे ही समीर के,
जल्दी - धीरे चलना !

उमड़-घुमड़ कर, गरज-तरज कर,
उज्ज्वल जल बरसाना ;

किसी ओर से उड़ कर आना,
किसी ओर मुड़ जाना ;

कैसा महल शून्य में बनना;
तड़ित् - दीप का जलना !

बादल चल - जीवन की छलना !

ऐसे बरस हजारों बीते
रीते नभ को भरते ;

सूखी भूमि भिगोते, धोते
मरु को उर्वर करते ;

पर सब कुछ जैसा - का - तैसा,
हिम बन जल का गलना !

बादल चल-जीवन की छलना !

२२

बदलती नवल द्युति शून्य की शक्ति-सी,
कौन तुम हो प्रिये, मौन अनुरक्ति-सी !

मसृणकाया मनोहरण - मायामयी,
तड़ित-चल-लोचना, उन्मना, तन्मयी,
मन्द-गति छन्द-लय-सरस-सुषमाऽऽशयी,

मुक्ति-सी विस्मृता, वासना ऽऽ सक्ति-सी !

जीवनार्पण-परा त्याग - आदर्श - सी,
भर रही विश्व को शान्तिमय हर्ष - सी,
विमल - शीतल - स्वभावा स्वयं मर्ष - सी,

स्वर्ग - सर कौन तुम स्वस्ति - सी, मुक्ति - सी !

२३

कजरारी री घिरी बदरिया,
रिमझिम - रिमझिम बूँदाबूँदी;
भीगी सारी हरी चुनरिया,
भरती अलसा रही उनींदी;

आता वातायन से झञ्झा-झोंका,
सिहर - सिहर उर उठता;
प्रिय-सुधि-सी मधु-गन्ध लिए
फूली, हुलसी मदमाती मेंहदी !

जर्जर - गात, रात में इतनी,
थर - थर करता कौन बटोही—
आया मेरे द्वार ; पुकारा—
भी न तनिक; मेरा मन मोही;

झिलमिल-झिलमिल करता दीपक
बुझा; कौन अब इसे सँभाले !
अह, सो जाऊँ, सुबह मिलूँगा,
इस छन वह भी जाए सो ही !
चौंक उठी मैं, कहीं न सचमुच—
हो कर दी ऐसी नादानी !
ऐसी नींद, और इस ऐसे
सपने के होने क्या मानी !

× × ×

ऊपर उठी धूप, छाया
मेरी आँखों में घना अँधेरा,
चला गया कब छोड़ हाय,
वह पहचानी पद चरण-निशानी !

'३७

२४

मैं न चातकी !
दरस - सरस - विन्दु भी न
माँग हा ! सकी !

शूल, विजन का जीवन,
फूल, तूल - सा तनु तन,
गुन - गुन प्रिय - गुण अगणन,
विकल - मन, थकी !

मिलन, विरह का इङ्गित,
प्रेम सतत ही शङ्कित,
दुख - उर पर सुर अङ्कित,
मैं सुखी सखी !

'३६

२५

मुकुल - मुख, फूलो ना, फूलो ना !
देखी रेख, सुनी धुनि पग की,
भूलो ना, भूलो ना !

छुटपन के छोटे छिन रीते,
—आँखमिचौनी के दिन बीते,
परछाईं - सी पास खड़ी मैं,
छू लो ना, छू लो ना !

रिमझिम फुहियाँ लोचन-घन की,
—जीवन में बहार सावन की,
प्यार - चपल उर के झूले पर—
झूलो ना, झूलो ना !

१३८

२६

तरु-तृण पल - छिन गिनते, फलद जलद, आओ !
शुष्क ज्योति-ज्वाल सींच, सजल - तिमिर, छाओ !!
पलकें उठतीं झुक - झुक;
अमृत - ध्वनि-मन्त्रोत्सुक—
कर्ण - रन्ध्र; मेघ - मन्द्र रागिनी सुनाओ !
ज्वलित ज्योति - ज्वाल लाल, सजल तिमिर, छाओ !!
निरावरण वन - उपवन,
सुरभि-हरण-हीन सुमन,
मुकुल सजे कनक - रेणु, वेणु वह बजाओ !
पहन ज्योति - ज्वाल-माल, तरुण तिमिर, आओ !!
विन्दु - विन्दु की प्यासी—
नील - सिन्धु - तट - वासी—
जीव - प्रभू भू पर घन, जीवन बरसाओ !
पहन ज्योति - ज्वाल - माल, तरुण-तिमिर, छाओ !!

'४०

२७

बजी वज्र में तेरी बाँसुरिया बेजार !
कड़ी कड़क में पड़ी सुनाई नई पुकार !!
बादल में बिजली कि लगी पानी में आग !
झञ्झा के झोंकों में तेरा जला चिराग !
लाल - लाल बूँदें; यह कैसी अश्रु-फुहार !
कड़ी कड़क में पड़ी सुनाई नई पुकार !!

'४२

२८

कौन देगा साथ इस तूफ़ान में ?
मैं चलूँगा सिर्फ़ चलने के लिए
मैं जलूँगा सिर्फ़ जलने के लिए
ख़ाक मञ्ज़िल का पता मुझको नहीं
कौन देगा साथ इस अभियान में ?

कौन देगा हाथ जलती आग में ?
कौन देगा माथ ख़ूनी फाग में ?
याद हैं पीयूष - पायी मित्र, पर,—
कौन देगा साथ इस विष - पान में ?

अब सुनी जाती नहीं बातें बहुत,
अब सही जाती नहीं घातें बहुत,
एक ही है सत्य, औ' सब झूठ है,
कौन देगा साथ इस अभिमान में ?

× × ×

चल रहा हूँ मैं अँधेरी रात में,
जल रहा हूँ घोर झञ्झावात में,
आज दुर्दिन की भरी बरसात है,
कौन देगा साथ इस सुनसान में ?

'४२

२६

मेरी ज्वाल लाल, स्वर्णिम,
इस पर काली छाया न करो !
बादल, तुम मेरे नभ में
घिर-घिर फिर-फिर आया न करो !!

धू-धू कर जल रहीं चिताएँ साधों की, अरमानों की,
यह उजाड़ बस्ता है कुछ मस्तानों की, दीवानों की,
मिटों न, मिट चुकने पर भी, जिनकी ऊँची-ऊँची लपटें,
और अभी तो शेष सभी हैं आहुतियाँ इन प्राणों की,

हँस-हँस कर जलने वालों पर
आँसू बरसाया न करो !
बादल, तुम सूने नभ में
आँसू भर-भर आया न करो !!

देखी तुमने ज्योति कभी ? ओ अन्धकार लानेवालो !
माप सके नभ की असीमता ? ओ अग-जग छानेवालो !
ज्योति जगाते जो जल-जल कर, उनकी दृढ़ता जानी है ?
ओ पल भर थिर कर, फिर तनिक हवा में उड़ जानेवालो !

मैं मिटने की साध लिए,
मुझ पर ममता-माया न करो !
बादल ! जड़ जीवन लेकर
चेतन नभ में आया न करो !

एक ढेर होगा जलते अंगारों का इस ठौर यहाँ,
बहुत सुलभ आएँगे उर से उन्हें लगाने और यहाँ,
फिर कुछ दिन के बाद, लोग कह कर विभूति सिर पर लेंगे,
अरे, भस्म भी उनका होगा, विकच-सुमन-सिरमौर यहाँ !

तुम तरुणों के अरुणाचल चढ़
करुण राग गाया न करो !
बादल ! ज्वाल-भरे नभ में
जल-कण लेकर आया न करो !

३०

दुर्दिन के ये मेघ मलिन आए;
सँग लाए आँधी - पानी !
झरे पीत के संग हरित भी,
बँटी कूल के संग सरित भी,
मेरा हो जो मौन धर्म, फिर कौन
मर्म की कहे कहानी !
जोड़-जोड़ कर तिनका-तिनका,
मोल चुकाया छन का, छिन का,
संग नाम के, दाम कमाएँ,
हैं ऐसे कितने बलिदानी !
जले व्यष्टि, ऋतु यह समष्टि की,
प्रखर पिपासा प्राण-वृष्टि की,
माने मृत्यु मनौती, जीवन
खुली चुनौती का अभिमानी !

'४७

३१

आँसू लाल हुए धरती के !
धूसर, धूमिल बाल सती के !!

(१)

पहला वज्र गिरा; गिरि - गुरु का
उपलों का वक्षःस्थल दहला,
गिरा दूसरा; गङ्गा - यमुना को
गया नया पानी नहला;
और तीसरा; सागर से हिम
मिला; शिला का सेतु बन गया;
तम - प्लावन में भूतल, उलटा,—
राहु, और नभ, केतु बन गया !
व्रणित - चरण क्षुर - धार - व्रती के !

(२)

सत्य - असत्य, अहिंसा - हिंसा
द्वन्द - युद्ध में क्षत - विक्षत हों !
धर्मक्षेत्र यह, जहाँ शिखण्डी—
के समक्ष गाण्डेय प्रणत हों ?
"पशुबल के स्मित - कालकूट को
आत्मा ने शतवार तो पिया !
राम, राम ! जब जिया, तब जिया,
आज मरण को वरण, लो, किया" !

× × ×

घनन - घनन बह प्रलय - प्रभञ्जन,
तड़ित-तड़क, धक्-धक् नभ का मन,
डम - डम - डम भैरव - घन - नर्त्तन,
छन्द बंद हों नति - विनती के !

'४८

३२

ये आए, दूसरे, नए !
गए साल के मेघ गए !!
वह लहराते अमृत - फुहारें,
इनकी असि की, मसि की धारें,
तिरछी बरछी - सी बौछारें,
गगन उतान, न नेक नए !
गए साल के मेघ गए !!
यह कहते, धरती मटमैली,
जब भी हरियाली है फैली,
अजब देखने की है शैली !
अन्य वदान्य, विदूषक ये !
गए साल के मेघ गए !
रीति यही अभिनव दाता की,
प्राण हरण करते त्राता की,
मेट जगत, युग-निर्माता की !
दुर्दिन के घन घिरे अये !
गए साल के मेघ गए !!

'४६

३३

आद्य सृष्टि का आदिम स्रष्टा इन्द्र भुवन - संताप-शमन हो!
क्रय - विक्रय के लिए वणिक् ज्यों—
रोक रखे गौवों को ज्यों - त्यों,
उसी भाँति जल - द्वार बंद कर,
रखा वृत्र ने, बाँध बबंडर,
उसके हन्ता 'वृत्र-शत्रु' को शत-शत बार नमन - प्रणमन हो !
जमा, थमा था 'अहि' पर्वत पर,
मार गिराया उसे वज्र धर,
फिर क्या ? छुटीं अचल जलधारें,
पहुँचीं सागर कूल - किनारे,
ज्यों बछड़ों के पास रँभाती जाती गाएँ क्षिप्र - चरण हो !
इन्द्र कामनाएँ बरसाता,
जन - जन के मन को हरसाता,
धेनु - यूथ को दृप्त वृषभ ज्यों,
करता सफल सकल याचकता,
क्षिति औ' अन्तरिक्ष का स्वामी क्षेम-अमृत-ऋत-नृम्ण-वरण हो!

३४

नभ पर पर्वत-से मेघों का दल छाया,
पावस का कैसा समय सलोना आया !

(१)

रवि-रश्मि-सहारे खिँचा स्वरस सागर का,
नव मास गर्भ-धृत उसी रसायन-वर का—
यह जगमग-जगमग-विज्जु-ज्योति-अभिरामा—
है, प्रसव कर रही शुभ नभस्थली श्यामा !

यह स्फटिक-विमल जल नीलम-घन की माया !
पावस का कैसा समय सलोना आया !!

(२)

यह सान्ध्य अरुणिमा नहीं, रक्त चन्दन है,—
निससे रञ्जित-सा कोमल, श्यामल तन है,
यह शीतल, मन्द, सुगन्ध समीर नहीं रे,
निःश्वास छोड़ता गुमसुम, धीरे-धीरे,

कामातुर-सा नभ निष्प्रभ या पँड़राया !
पावस का कैसा समय सलोना आया !!

(३)

यह हवा बीच से चली सजल मेघों के,–
ऊदी - ऊदी, इठलाती, खाती झोंके,
इतनी ठंडी कि कपूर-तुहिन - छवि छीनी,
भरती सुगन्ध केतक की भीनी - भीनी,
अञ्जलि भर - भर पीने को जी ललचाया !
पावस का कैसा समय सलोना आया !!

(४)

इन छिटफुट, फुटकल जलदों से तारापथ–
छिपता, दिखता ; इसका अक्रम - सा इति-अथ;
ऐसा लगता, जैसे प्रशान्त सागर हो,—
उत्तुङ्ग - खर्ब - गिरि - गह्वर का आगर जो !
ज्यों गगन-सिन्धु ने एक रूप हो पाया !
पावस का कैसा समय सलोना आया !!

(५)

मदमाते, नीरव भौंरे जो लखने पर,
रस से डलबल वे जामुन - फल चखने पर,
ऐसे ही सरस रसाल डाल-डण्ठल पर
जो अनिल-चलित हो बिछ जाते जल-थल पर,

यों नील पीत परिच्छत कानन लहराया !
पावस का कैसा समय सलोना आया !!

(६)

जो पत्र-पुटों पर टप-टप टपक-टपक कर—
आता जल; विहगों का दल लपक-झपक कर—
है उसे पी रहा झुक-झुक, उझक-उझक कर,
गीले डैने फड़का, सुलझा उलझे पर,
कोई प्यासा, कोई बिन-पिए अघाया !
पावस का कैसा समय सलोना आया !!

(७)

गिरि-सरिताएँ जल्दी-जल्दी हैं भरती—
—उन मुक्ताओं को, जो प्रवाल बन झरतीं;
घुल कर गैरिक ने जल को लाल बनाया—
जिस पर कदम्ब-कुसुमों का परिमल छाया,
जिसका पीछा करता मयूर-स्वर आया !
पावस-रस से है सराबोर मन-काया !!

३५

जीवन जीव मात्र को देने पावस रस - शीतल
आया, छाया रवि-शशि पर, आकाश-दिशा चञ्चल !

तड़ित् - तपक, - गर्जन - तर्जनमय—
निकिड़ नील घन से, नभ निश्चय—

दिखता है रे, सगुण ब्रह्म-सम, ढँके जीव को सत्त्व-रजस्-तम,
ज्योति अदृश्य गगन की, तन की, दोनों अति विह्वल !

आठ मास तक वसुधा का धन—
सञ्चित करता रवि-कर बन घन,
लगा लुटाने का अब मेला,
आई बरसाने की वेला,

स्तब्ध भूमि पर अमरपुरी की उतर रही हलचल !
कोई सहृदय, देख तप्त जन,
उसे जुड़ाने को, निज जीवन—
दे डाले; त्यों ही महान् घन—
निरख दग्ध जग, विद्युल्लोचन,

उष्ण उसाँसों से कम्पित हो ढरकाते दृग-जल !

शुभ परिणाम सकाम तपस् का—
निरख हृष्ट होता मन कृश का;
ग्रीष्म-शुष्क-तनु थी यह धरती
सलिल-सिक्त हो आज हुलसती,

तप तन,मन,-दोनों को कर देता निष्कलुष, विमल !

रवि की छवि के झरते-ढरते
जुगनू जगमग-जगमग करते;
मलिन किन्तु हो जाते तारे,
जैसे पुण्य पाप से हारे,

ज्यों कलियुग में वेद नहीं, होते पाखण्ड सफल !

मेघ-शब्द सुन दादुर बोले,
ज्यों गुरु-स्वर सुन बटु हुँह खोले;
उमगी क्षुद्र नदी की धारा,
ज्यों उच्छृङ्खल धन-मद-मारा !

बूँद-घात गिरि सहते, रहते भक्त विपद्-अविचल !

३६

उतर रेत में, आक-जवासा-भरे खेत में,
पागल बादल,
शून्य गगन में व्यर्थ मगन मँडलाता है !
इतराता इतना सूखे गर्जन-तर्जन पर,
झूम-झूम कर निर्जन में क्या गाता है ?

(१)

दीरघ-दाघ निदाघ उगलता रहा आग ही,
डँसता भूमि, मयूख-दन्त रवि शेषनाग ही !
हरित-अरित तरु-गुल्म रह गए उलस-झुलस कर !
शुष्क-कण्ठ, आतुर-उर, कातर-स्वर नारी-नर !!
ऐसे में तू एक शिखर से अपर शिखर पर,
रोमल, श्यामल मेघ-शशक-सा विचर-विचर कर,—
चरता है; परिश्रान्त गज-सा वह खेल दिखाता,
नटखट बादल,
जो भूखे-प्यासे को नहीं सुहाता है !
उतर रेत में, आक-जवासा-भरे खेत में,
चञ्चल बादल,

शून्य गगन में व्यर्थ मगन मँडलाता है !!

(२)

ताड़ खड़खड़ाते हैं केवल; चील, गीध ही गाते,
द्रवित दाह भी जम जाता धरती तक आते-आते,
कलरव करने वाले पंछी, पत्तों वाली डाली,
उन्हें कहाँ ठंडक मिलती है , इन्हें कहाँ हरियाली ?
ऊपर-ऊपर पी जाते हैं, जो पीने वाले हैं,
कहते,—ऐसे ही जीते हैं, जो जीने वाले हैं !

इस नृशंस छीना-झपटी पर, फट कपटी पर,
उन्मद बादल,
मूसलधार शतधार नहीं बरसाता है !
तो सागर पर उमड़-घुमड़ कर, गरज-तरज कर,—
व्यर्थ गड़गड़ाने, गाने क्या आता है ?

(३)

कुपथ-कुपथ रथ दौड़ाता जो, पथ-निर्देशक वह है,
लाज लजाती जिसकी कृति से, धृति-उपदेशक वह है,
मूर्त दम्भ गढ़ने उठता है शील-विनय-परिभाषा,
मरण रक्त-मुख से देता जन को जीवन की आशा,

जनता धरती पर बैठी है, नभ में मञ्च खड़ा है,
जो जितनी है दूर मही से, उतना वही बड़ा है,
यही विपर्य्यय, यही व्यतिक्रम मानदण्ड नव,
मानी बादल
तू भी ऊपर ही से सैन चलाता है!
तेरी बिजली राह दिखाती नहीं नई रे,
यह परम्परा तो तू भी न ढहाता है!

(४)

गिरि-शिखरों की उठा बाहुएँ, स्वर न अधर तक आता,
आ रे आ, तुझको बुला रही तेरी धरती माता!
समय बीतता जाता है, बीता न बहुर कर आता,
आ रे आ, मरघट को नव फूलों का देश बनाता!
क्षेत्र-क्षेत्र को प्लावित करना, है घट-घट को भरना,
आ रे आ, प्रिय, अभी तुझे तो सात समुन्दर तरना!
कोने कोने, श्याम-सलोने, तू लुक-छुप कर,
गीले बादल,
भूतल को कब वृन्दा-विपिन बनाता है
बूँद-बूँद देकर सूखे को हरित, मञ्जरित
और गुञ्जरित करने अब कब आता है?

३७

जलकण बरसाने वाली
काली पलकों की कोर हो !

(१)

स्वाती के हे मेघ, बुझा सकते
न किसी की प्यास तुम ?
दूर-देशवासी कि पुरा सकते
न किसी की आस तुम ?
कौन चातकी को समझाए,
तुम कैसे चितचोर हो !

(२)

हरित पर्ण से सजे हिंडोले,
नील कुसुम की डोर तुम,
कण्ठ-कण्ठ से कढ़ें कजलियाँ;
लय - तानों के छोर तुम,

घन, शिखण्ड-मण्डल फहराए
मन के वन के मोर हो !

(३)

तिमिर निरख कर प्राच सिहरते
हैं प्रकाश - अभियान में,
रात मरुस्थल की मध्य पन्थ में
दिखती है सुनसान में,
पर श्यामल अवगुण्ठन डाले
तुम जीवन के भोर हो !

३८

पूर्व दिशा में बादल उमड़े,
पश्चिम, बिजली चमकी !
पूर्व दिशा में रिमझिम-रिमझिम,
पश्चिम, छवि छम-छम की !

(१)

बादल-बिजली की यह क्रीड़ा,
कहीं हुलास, कहीं पर पीड़ा,
पश्चिम लाल रोष से; पूरब—
को है लगी गुलाबी व्रीड़ा !
पूर्व पूर्ववत् शान्ति-उपासक,
पश्चिम देता धमकी !
पूर्व दिशा में ऊदे बादल,
पश्चिम, चमकी चमकी !

(२)

बादल गरज रहे कि सामयिक—
वृत्तों, घटनाओं की झिकझिक

अतिसामान्य मनोवेगों का
परिचय देती क्षणिक, लाक्षणिक;
पर वर्षा की वारिधार में
सहज, चिरन्तन वृत्ति उकसती,
कसमस करते प्राण, गान की
वेल अश्रु से सिँच कर हँसती !
तन, मन से अस्वस्थ के लिए
तो न दामिनी दमकी !

३६

पीपल की डाली झुक आ री,
मैं टुक झूला झूलूँगी !
देवराज - गजराज गगन से
बंजर - उर्वर सींच रहा;
वृन्द बकों का पङ्क्ति फहाफह
हौले - हौले फींच रहा,
टँकी बुँदकियाँ वीरबहूटी
मखमल-सी यह कोमल घास,
आ रे भैया, तू कदम्ब बन,
फूल-पात से भर आकाश,
मैं सुरभित कोंपलें बिछा कर
ताल - तलैयाँ छू लूँगी !
मेरा भैया है कदम्ब, मैं
बहन केतकी, फूलूँगी !!

(२)

राखी का त्योहार मनाने
भीगा ही आया भागा,

पर सावन के पूनम को दे
कौन बाँध सुरधनु - धागा ?
तू भाभी लाए तो वह
नभ भी उतार धरती पर ले,
छीने मेरे नेग - जोग,
तेरी सुध-बुध चुपके हर ले,

× × ×

युग-युग जिए, बलैयाँ लूँ,
मैं भी क्या तुझको भूलूँगी ?
पीपल की डाली झुक आ री,
मैं टुक झूला झूलूँगी !

'५०

४०

शून्य प्रथम था, रङ्ग मिला फिर नभ को,
आज मिले बादल के पागल प्राण !
चित्र मात्र था नीलाम्बर यह पहले,
आज मिली गति, आज मिले हैं गान !!

× × ×

कुछ ऐसा ही होगा यह जग
जब न रहे होंगे कानन - नग,
नहीं बने होंगे नर, पशु, खग,

वही 'असत्, अव्यक्त आदि' कहलाता—
आर्ष सत्य यह; वैज्ञानिक अनुमान !

तीन स्वरों से सात स्वरों तक,
तृण-उटजों से फूल-घरों तक,
विरस तपस् से सरस वरों तक,

—बहिरन्तर का क्रम-विकास जग जीवन,
आज पा रहा नूतन तन-परिधान !

× × ×

पावस कवि की सहज साँस है,
शून्य पूर्ण चेतनाकाश है,
निःसंशय नभ कालिदास है !

मेघगीत गाता-गाता छा जाता,
बरसाता जग के सुर की पहचान !

'५०

४१

मेघों की शीतल छाया में—
अब आया मैं; यह आया मैं !

यहाँ तपन का ताप नहीं है,
हाँ, जीवन अभिशाप नहीं है,
चाहूँ जबतक भरमाऊँ मैं—
जाग्रत स्वप्नों की माया में !
मेघों की शीतल छाया में !!

बहुत उतार-चढ़ाव, थके तुम,
किन्तु लक्ष्य तक पहुँच सके तुम ?
आओ, इस धुँधले समतल पर—
सञ्चित प्राण करो काया में !
मेघों की शीतल छाया में !!

हाँ, मैं भी तुम-सा ही राही,
दूर मुझे भी तो जाना ही,
अन्तर है तो बस इतना ही,
पीछे तुम, पहले आया मैं !
मेघों की शीतल छाया में !!

४२

बादल री !
विन्दु-विन्दु मधु बरसे,
तरसे भूतल पागल री !

सौरभ - भीना झीना - झीना
अम्बर हर पुरवाई
विहर सिहरती, डरती - डरती,
धरती – धरती आई,

चरण-चाप उस अ-तनु-वरण की
फूल – पात चल री !

नील-वसन-से निविड़ तिमिर का
मुख पर घूँघट डाले,
झिल्ली - गुञ्ज - तमाल - कुञ्ज में
खड़ी कौन तुम बाले !

'५०

ये भोले जुगनू सुषमा का
भेद न खोल सकेंगे!
अनबोले द्रुम तुमसे पहली
बार न बोल सकेंगे!

वेणु बजाऊँगा सुनने को
झङ्कृत पायल री!

बादल री!
विन्दु-विन्दु मधु बरसे,
तरसे भूतल पागल री!

४२

बोल, कहीं बोल, यहाँ तो न बोल श्यामा !
अमिय छहर जहाँ, वहीं गरल घोल श्यामा !!

जीवन के उपकरण

बदल गए; बदल गए पहले कारण – करण,
जीवन के बाने में आने वाला मरण,
विरह कह इसे न, रिक्त हृदय तोल श्यामा !
बोल कहीं बोल, यहाँ तो न बोल श्यामा !!

सावन के श्याम घन

जब बरसे, तब बरसे वसुधा - हृदयाभरण,
मुक्तागण के बदले अब पवि, करका - कण,
नभ की निर्धनता का नया मोल श्यामा !
बोल, कहीं बोल, यहाँ तो न बोल श्यामा !!

कानन के कुसुम दल

झरते हैं; मर्मर करते हैं प्रतिछन - पल,
विफल शून्य में विलीन होता है परिमल,
कटी डाल, तना तना, शून्य दोल, श्यामा !
बोल, कहीं बोल, यहाँ तो न बोल, श्यामा !!

४४

पथ अनन्त में भटक गया है
बादल यही अकेला !
बरस सका कण एक न भू पर,
ऊपर से श्रम झेला !!

(१)

बड़ी बेबसी होती मन की,
साध जिसे हैं कहते,
वे क्या जानें धुन ?
उधेड़बुन में ही जो हैं रहते !
निःसम्बल होने पर भी
आगे बढ़ना पड़ता है,
निराधार नभ में कम्पित—
पद से चढ़ना पड़ता है,
एक हाथ, यदि साथ मृत्यु के,
खेला, तो बस खेला !
पथ अनन्त में भटक-भटक, रह
जाए भले अकेला !!

(२)

इस बादल ने सप्त सिन्धु के
जल का पान किया था,
विद्युद्-वर्जन और वज्र—
गर्जन में गान किया था;
किन्तु अचानक आई आँधी—
के मद को क्या कहिए !
दल के दल उड़ चले कि जैसी
हवा बहे, चुप बहिए !
इधर थमा यह, उधर क्षितिज को
घेर लग गया मेला !
पथ अनन्त में भटक गया यह
बादल तभी अकेला !!

४५

मेघ-मलिन दिन-रात !
तो हम अपने ही मन के अनुरूप रचें बरसात !
पुरवाई के झोंके से बिखरे न मर्म का मर्मर,
गीले स्वर में उष्ण विचारों की हम छेड़ें बात !
जल-कणिकाएँ पिघलाएँ पाषाण-प्राण मत छू कर,
करे कर्ममय जीवन का श्रम-स्वेद कठिन आघात!
बूँदों की लड़ियाँ धरती को न पिन्हाए नभ झुक कर,
लोचन-वन की जुहियों से हम ढँक दें विवश गात !
उर्वर में भी जो न उगाए अंकुर जलधर-गर्जन,
हम अगीत-संगीत-सहारे सिरजें पुष्पित प्रात !
पिक की कूक, पपीहे की प्यासी पुकार जो निष्फल,
मौन हमारा करे विश्व-मानस को रस से स्नात !

४६

कहे आज कोई
कि बरसात में जो किसी रात सोई !
रहें टिमटिमाते किनारे-किनारे,
मरे व्योम से टूट जाएँ न तारे,
तड़ित् कौंध कर नीलिमा में समाए,
अतलता सजल यों दृगों में सँजोई !
कहे आज कोई !
तिमिर का चँदोवा क्षितिज की परिधि है,
मनोरथ सजा है, न पथ नींदनिधि है,
कि अभिसार में लौटने की शपथ है,
मरण संतरक्ष; चेतना यों न खोई !
कहे आज कोई !
न पूछो मुझी से कहाँ कौन मेरा,
न पूछो कि इस रात का कब सवेरा !
मुखर मौन हो प्राण जो गान गाए,
न यह जान पाए, हँसी या कि रोई !
कहे आज कोई !

'५०

४७

मेघ तुम्हीं हो; गीत तुम्हारे लिए गा रहा !
जलद तुम्हीं हो; जब भी दृग-जल में चढ़ा रहा !!

पास रखो या दूर, मुझे तो आस तुम्हारी,
गरजो - तरजो, अमृत झरो, है प्यास तुम्हारी,
क्या अनन्त से भय ? लो, मैं तो बढ़ा आ रहा !
शून्य को नहीं व्यर्थ पूछ कर रहा, गा रहा !!

चन्दा की चांदनी जाय छिन, मैं जी लूँगा,
अन्धकार बरसे न, प्यार से मैं पी लूँगा,
तुम समझोगे, कौन मोर को है नचा रहा ?
पिक वसन्त से अब तक किसकी रट लगा रहा ?

तुम खोजोगे, तुम्हें खोजते यदि खो जाऊँ ?
तुम खिहँसोगे, तुम्हें देखकर यदि रो जाऊँ ?
बस, ऐसी ही बात एक है, जो बता रहा,—
"—तुम सुनते हो, जो न गा सका; जो न गा रहा ?"

४८

मेरी साँसें ही गीत; मीत,
तुम कितनी तानें सँजो सकोगे ?
मेरा जीवन ही मेघ सजल,
तुम कितनी आँखें भिगो सकोगे ?
गाने दो मुझको एकाकी,
जाने दो बरस, बहुत बाकी,
रोको न मुझे; सुन एक कड़ी
तुम कितनी लड़ियाँ पिरो सकोगे ?
मेरी साँसें ही गीत; मीत,
तुम कितनी तानें सजो सकोगे ?

(२)

मैं मथता सिन्धु रहा मन का,
तुम कितनी बूँदें बिलो सकोगे ?
कण्टक-वृन्तों पर खिले हुए को,
कितनी सुइयाँ चुभो सकोगे ?

मैं स्वरस बरसने आया हूँ,
सौरभ में हँसने आया हूँ,

झीने सौरभ, भीने रस को
निज कण्ठहार में न पो सकोगे !
बोझिल-छिछले उर-बीच अरे,
तुम भरे मेघ को न गो सकोगे !!

मेरी साँसें ही गीत; मीत,
तुम कितनी तानें सँजो सकोगे ?
मेरा जीवन ही सावन-घन,
तुम कितनी आँखें भिगो सकोगे ?

४९

निष्फल नहीं मेघ का आना !
कितना सुन्दर चन्द्रवदन पर
श्यामल, चञ्चल कुन्तल छाना !

द्वार बंद करने की सुध से
जब हो वातायन खुल जाता,
गहरे काजल के घुलने से
जब यमुना का जल धुल जाता,
जब कुछ ऐसा होता जिससे
भाता नहीं बैठ पछताना !
निष्फल नहीं मेघ का आना !!

मन नयनों में आ विराजता,
नयन गगन में हों गड़ जाते,
जड़ में आती उमड़ चेतना,
जब सब चेतन हो जड़ जाते,
हो अनुभूति बदलती करवट–

क्यों यों रोना या क्या गाना !
निष्फल नहीं मेघ का आना !!

घर से आँगन, आँगन से घर,
घर-आँगन, कुछ भी न सुहाता
आ-आ कर प्रिय जन फिर जाते,
लगता कोई पास न आता !
गले लगे को लगता,—निर्मम,

सपने में भी तो दिख जाना !
निष्फल नहीं मेघ का आना !!

आई बात भूल जाती हो,
भूली बात याद हो आती;
हवा बुझाने की हठ ठाने,
औ' निशि भर जलने की, बाती,
दो अजजाने एक साथ ही—

बोल उठें—कैसा पहचाना !
निष्फल नहीं मेघ का आना !!

५०

मेघ-भरे, अलसाए दिन की दोपहरी .

दुहरी होती, जभी अकेला हो कोई;
जब पीपल के पत्ते-पत्ते पर झर-झर—
निरुद्देश्य क्रीड़ा की बेला हो रोई !

विकल कूल पर हो यात्री, खुल जाय तरी !
मेघ-भरे अलसाए दिन की दोपहरी !!

पवन नीप-वन में सनसन चहुँओर बहे,
आसपास को चकित नयन निर्जन निरखे—
मौन रहे या स्वगत कथा सोच्छ्वास कहे !

नत चितवन, किसने री भारी व्यथा धरी ?
मेघ-भरे, अलसाए दिन की दोपहरी !

पागलपन भी मन की थकन, विराम है,
और नहीं तो रात-रात भर चिल्ला कर
अभी पपीहा क्यों करता विश्राम है ?

जीवन जीता नहीं, मौत भी नहीं मरी !
मेघ-भरे, अलसाए दिन की दोपहरी !!

५१

मेरा गान न अब भी शेष !
अब भी नभ में मेघ अशेष;
अब भी दूर पिया का देश !!

मध्य निशा, चातक-आह्वान,
सिहर रहा सारा सुनसान,
अब भी अबुझ अबूझी प्यास,

अब भी असह विरह का क्लेश !
मेरा गान न अब भी शेष !!

जीवन के दिन जो दो-चार,
उन्हें बचा लूँ, क्या अधिकार !
अब भी पथ पर रथ की लीक,

अब भी बढ़ने का आदेश !
मेरा गान न अब भी शेष !!

कोई कहता, इधर ढलाव,
कोई कहता, उधर बहाव,
अब भी मन का दूर पड़ाव;

अब भी प्राणों में आवेश !
मेरा गान न अब भी शेष !!

अन्धकार का मर्म दुरूह,
भेद सकूँगा मैं वह व्यूह,
अब भी यह विश्वास-प्रकाश;

अब भी तड़प तड़ित् अनिमेष !
मेरा गान न अब भी शेष !!

रोना धरणि-व्रणों को सींच,
खोना धूलि-कणों के बीच,
—अब भी व्रत-रत मेघ अमोघ;

अब भी गगन ध्वनित-सन्देश !
मेरा गान न अब भी शेष !!

१५०

साहित्य-दर्शन

(सैद्धान्तिक तथा विवेचनात्मक निबन्ध-प्रबन्ध)

(१)

"हिन्दी में साहित्यालोचन पर बहुत ही कम पुस्तकें लिखी गई हैं—'साहित्य-दर्शन' में साहित्यालोचन के जिन अंशों पर विवेचना प्रस्तुत की गई है वे श्यामसुन्दर दास जी अथवा गुलाब राय जी के ग्रंथों के अंशों से निश्चय ही अधिक स्वस्थ एवं सरस हैं। यदि शास्त्री जी साहित्यालोचन पर एक स्वतन्त्र ग्रन्थ लिख पाते तो साहित्य का बड़ा उपकार होता।

···तुलनात्मक समीक्षा में कभी-कभी एक के प्रति आग्रह और दूसरे के प्रति उदासीनता के चिह्न देखने को मिल जाते हैं पर शास्त्री जी ने तुलनात्मक विचार करते हुए भी किसी के प्रति अन्याय नहीं किया है—वह वस्तु के मूल्याङ्कन में सन्तुलन से काम लेते हैं। तुलनात्मक समीक्षा करनेवाले असंख्य समीक्षक जो एक मोटी लकीर खींच कर सादृश्य मूलक सभी दृष्टि-बिन्दुओं को नाम-ब-नाम लिख मारते हैं उनके लिए यह पुस्तक आदर्श का काम करेगी।

···पुस्तक का अन्तिम निबन्ध महाकवि निराला की काव्य-कला पर है। तिरपन पृष्ठ के इस निबन्ध में जानकीवल्लभ जी ने निराला की काव्यकला पर उत्कृष्ट समीक्षा प्रस्तुत की है। जिस प्रकार राम के चरित्राङ्कन के लिए तुलसी जैसे कवि की आवश्यकता थी ठीक उसी प्रकार निराला जैसे महाकवि के लिए जानकीवल्लभ जी जैसे विद्वान् आलोचक की आवश्यकता है जो कवि के प्रत्येक शब्द, प्रत्येक वाक्य, प्रत्येक चरण तथा प्रत्येक भाव के सौन्दर्य्य की विवृति कर सके। हिन्दी-कविता के अध्यापन तथा कवि-सम्बन्धी विवेचना में जिस 'सतरिआ अर्थायन' की परिपाटी प्रचलित है उससे कवि और कविता—दोनों का अहित हो रहा है। ऐसी स्थिति में निराला पर निबन्ध लिख कर हिन्दी प्रान्तों के अध्यापकों एवं समीक्षकों को भी शास्त्री जी ने दिशा-निर्देश किया है। इस निबन्ध का प्रत्येक पाठक उनकी प्रतिभा का कायल होगा तथा यह विश्वास करने के लिए विवश

होगा कि शास्त्री जी ने आधुनिक समीक्षा को पाण्डित्य का ठोस आधार दिया है।

शास्त्री जी की शैली अपनी है—उसमें पाण्डित्य एवं अध्ययन की छाप तो है ही, कवि की अन्तर्दृष्टि भी है। शास्त्री जी की शैली के कारण सारी पुस्तक प्रभावोत्पादक, विचारोत्तेजक एवं चिन्तन-मनन के योग्य है।" —जनवरी '५२ की 'प्राची' में– प्रो० कपिल, एम. ए.

(२)

शास्त्री जी में एक ओर जहाँ भावप्रवणता है, दूसरी ओर विलक्षण तटस्थता और नीर-क्षीर-विवेक है। 'आलोचना का आदर्श' शीर्षक लेख पढ़कर तो हिन्दी की अधिकांश आलोचना को देखने को भी जी नहीं चाहता। 'हिन्दी काव्यालोचन का क्रमिक विकास' 'मीरा और महादेवी' लेखक की गहरी सूझबूझ के परिचायक हैं। 'मीरा और महादेवी' को तो मैंने यों भी पढ़ा था पर मीरा के सगुण से महादेवी के निर्गुण तक का रूपान्तर और उसकी मध्यवर्ती कड़ियाँ शास्त्री जी की ही आँखों से देखने पर समझ सका। एक-एक पंक्ति में दोनों की विशेषताओं का तुलनात्मक वर्णन चकाचौंध पैदा करने वाला है।

निराला जी हिन्दी के उन भाग्यशाली कवियों में हुए हैं जिन्हें अपने साथ पूर्ण न्याय करनेवाला आलोचक मिल गया हो। शुद्ध आलोचक से यह काम नहीं हो सकता था। शास्त्री जी की तरह जिसके मन में कलाकार और जौहरी की गंगाजमुनी बहती होगी वही किसी अन्य कलाकार के प्रति इतना न्याय कर सकेगा। शास्त्री जी ने जिस बारीकी और सुन्दरता से निराला-काव्य के प्रत्येक गुण को सुस्पष्ट दिखाया है वह निराला जी पर निरर्थकता का आरोप करनेवालों की आँखें खोल देगा। आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है कि साहित्य-दर्शन हिन्दी की पनपती हुई नई और सहृदयतापूर्ण आलोचनाशैली को अपने अनेकानेक संस्करणों द्वारा पुष्पित-पल्लवित करेगा।

—दिसम्बर '५१ की 'नईधारा' में–श्री वीरेन्द्रनारायण

(मूल्य केवल चार रुपए)

श्रीजानकीवल्लभ शास्त्री

—"श्री जानकीवल्लभ शास्त्री के समान सुदृढ़ साहित्यिक आधार और विशाल सांस्कृतिक परम्परा विरले ही को प्राप्त होगी।"

—श्रीहजारीप्रसाद द्विवेदी : विश्वभारती

—"जानकीवल्लभ जी प्राचीन साहित्य की पूरी जानकारी रखनेवाले नवयुग के प्रौढ़ लेखक हैं।" —श्रीनन्ददुलारे वाजपेयी

—"बिहार ही नहीं, समग्र देश के हिन्दी-कवियों में जानकीवल्लभजी हमें बहुत आगे लगते हैं। काव्यशास्त्र के तत्त्वदर्शी विद्वान होते हुए भी इन्होंने जो मधुर गीत गाए हैं उनमें हृदय को स्पर्श करने की अद्भुत क्षमता है। वास्तव में संगीतात्मकता तथा काव्य-कौशल के विचार से हम इन्हें सूर, मीरा एवं विद्यापति की ही शृङ्खला में जोड़ना चाहेंगे।" —प्रो० कपिल : प्राची

—"शास्त्री जी की बहुमुखी प्रतिभा आधुनिक हिन्दी साहित्य और उसकी वर्तमान मनोवृत्तियों को अपनी रचनाओं से बराबर चौंकाती रही है।

शिप्रा बीसवीं सदी के हिन्दी काव्य की परम्परा के गीतों से कुछ अलग की चीज है। अतः इसका काव्यगत महत्त्व जितना है, उससे कुछ कम ऐतिहासिक महत्त्व भी नहीं। सच तो यह है कि शिप्रा के कवि जानकीवल्लभ स्वयं साहित्य में, इसी दृष्टि से, महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि वे केवल कवि नहीं।

—श्रीनरेश : साहित्य

—"गीतिकाव्य के भण्डार को शास्त्री जी से बड़ी - बड़ी आशाएँ हैं। उनमें भावप्रवण प्राण, विदग्धतापूर्ण मस्तिष्क और सहज ललित रसधारा बरसानेवाली लेखनी का उत्तम सन्तुलन है।

—बी० ना० : नई धारा